Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 5 | ISSN : 2581- 6306

संस्कृत साहित्य में वर्णित राजधर्म की वर्तमानकालिक प्रासंगिकता

डॉ. दिनेश शर्मा
सहायकाचार्य (साहित्य विभाग)
राजकीय संस्कृत महाविद्यालय-क्यार्टू
जिला-शिमला (हि. प्र.) भारत।

Article Info

Volume 3, Issue 5

Page Number: 14-20

Publication Issue :

September-October-2020

Article History

Accepted : 10 Sep 2020

Published : 23 Sep 2020

शोध आलेख सार

संस्कृत काव्यों में अनेकत्र वर्णित इन उपदेशों का अनुपालन करते हुए तत्कालीन राजवर्ग की नैतिकता, चरित्रों की पावनता तथा प्रजावत्सलता ज्ञात होती है। वस्तुतः वर्तमान शासन प्रणाली का मूल उत्स धर्मसूत्र एवं धर्मशास्त्र है, जिसका उपबृहण संस्कृत साहित्य में हुआ है।सहस्रों वर्षों के बाद भी स्मृति ग्रन्थों में निर्दिष्ट तथा संस्कृत काव्यों में राजाओं की राजव्यवस्था में अनुपालित राजधर्मविषयक सूत्रों का वर्तमान शासन व्यवस्था में महनीय योगदान परिलक्षित होता है। हजारों वर्ष पूर्व निर्मित ये सिद्धान्त यद्यपि भिन्न परिस्थितियों में लिखे गए थे किन्तु आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। वर्तमान शासन व्यवस्था में धर्मशास्त्र प्रोक्त इन राजधर्म विषयक गुणों का अनुकरण यदि वर्तमान शासक करें तो निश्चित रूप से प्रजा का हित हो सकता है। किञ्च संस्कृत साहित्य में वर्णित राजव्यवस्था के सूत्रों की हजारों वर्षों के उपरांत प्रासंगिकता से यह भी सिद्ध होता है कि ये रचनाएं कालजयी है।

मुख्य शब्द – संस्कृत, साहित्य, राजधर्म, वर्तमानकालिक, नैतिकता, सार्वकालिक, सार्वभौमिक, सार्वजानिक।

संस्कृत साहित्य विश्व का प्राचीनतम साहित्य है। सहस्र-वर्षों से संस्कृत वाङ्मय ने अपने उज्ज्वल ज्ञान से विश्व की अनेक सभ्यता और संस्कृति के उन्नयन और विकास में अपनी भूमिका अदा की है। सार्वकालिक, सार्वभौमिक और सार्वजानिक उपदेशों के अतिरिक्त संस्कृत वाङ्मय की एक और विशेषता यह है कि शायद ही जीवन का कोई पहलू है जो यहाँ अछूता रहा हो। राष्ट्र को समृद्ध और संगठित बनाने के लिए मनु आदि

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

स्मृतिकारों ने राजधर्म के सूत्रों का प्रणयन किया। मनुस्मृति के सप्तम अध्याय में राजधर्म वर्णन प्रसङ्ग में राजाओं के आवश्यक गुणों का उल्लेख करते हुए आदिपुरुष मनु कहते है कि राजाओं का चारीत्रिक स्तर इतना ऊंचा हो कि जनता उसका अनुकरण करें तथा कोई उस पर उंगली न उठा सके। किसी भी देश का शुभाशुभ राजा के आचार-व्यवहार पर निर्भर होता है। राजा और प्रजा के परस्पर सहयोग और समन्वय से सबका कल्याण निश्चित है। **"राजा प्रकृतिरंजनात्"** के अनुसार राजा का मुख्य कर्तव्य प्रजा की सेवा करना होता है। राजकार्य के संचालन में राजा का आचार और उसकी प्रजापालन की व्यवस्था के सम्बंध में स्मृतिग्रन्थों में (राजधर्म की) चर्चा की गई है। संस्कृत वाङ्मय में वर्णित राजाओं की कार्यशैली और राजव्यवस्था में स्मृतिकारों के द्वारा निर्दिष्ट राजधर्म का अनुपालन दिखाई देता है। संस्कृत साहित्य के काव्य तथा नाटकों में राजा, मंत्री, दण्डविधान, करव्यवस्था, न्यायव्यवस्था आदि का यथावसर सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। राजव्यवस्था चलाने में प्राचीन भारत में राजाओं की महती भूमिका रही है। धर्मशास्त्रों में निर्दिष्ट तथा संस्कृत काव्यों में प्रतिपादित राजधर्म की वर्तमान शासनव्यवस्था में महती प्रासंगिकता है। धर्मशास्त्र और काव्यों में हजारों वर्ष पूर्व निर्दिष्ट एवं वर्णित ये राजसिद्धांत हमारे लिए मात्र धरोहर नहीं हैं अपितु ये हमारी बौद्धिकता और संवेदना को उत्प्रेरित भी करते हैं। काव्यों में प्रतिपादित राजाओं के पुनीत चरित्रों में आचरणशुद्धि की प्रेरकता, प्रजावत्सलता तथा विनयशीलता पदे-पदे दृष्टिगोचर होती है। इसके अतिरिक्त राजनीतिविषयक दण्डव्यवस्था और न्यायपथ का भी सुन्दर उपदेश मिलता है। रघुवंश में वर्णित राजधर्म न केवल रघुवंशी राजाओं के राजधर्म को व्यक्त करता है अपितु वर्तमान शासनव्यवस्था के शासक को प्रजा के कल्याण हेतु मार्ग भी प्रशस्त करता है। रघुवंशी राजा शास्त्रसम्मत राजकाज व्यवस्था के संवाहक थे। इस दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो रघुवंशी राजाओं का चरित्र वास्तव में अनुकरणीय है। कालिदास ने रघुवंशी राजाओं के चरित्र की पवित्रता, कार्य के प्रति दृढ़ता तथा साम्राज्य की विशालता, शास्त्र के अनुसार आचरण, मितभाषिता एवं धर्मपरायणता का वर्णन किया है-

सोऽहम् आजन्मशुद्धानाम् आफलोदयकर्मणाम् ।
आसमुद्रक्षितीशानाम् अनाकरथवर्त्मनाम् ।।
यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम् ।
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम् ।।
त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम् ।
यशसे विजिगीषुणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ।।[1]

महाकवि कालिदास की कालजयी रचना रघुवंश में राजधर्म बहुत्र वर्णित है। रघुवंश के प्रथम, पञ्चम, अष्टम और चतुर्दश सर्ग में कालिदास ने राजधर्म का वर्णन किया है। रघुवंशी राजा अपनी प्रजा का कल्याण करने हेतु

सतत प्रयत्नशील थे। रघुवंश के प्रथम सर्ग में कहा गया है कि जिस प्रकार सूर्य हजारों गुना जल लौटाने के लिए पृथ्वी से जल ग्रहण करता है राजा दिलीप प्रजा के कल्याण के लिए प्रजा से कर लेकर उनके विकास कार्यों में लगाकर उन्हें लौटा देते थे-

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ।
सहस्रगुणं उत्स्रष्टुं आदत्ते हि रसं रविः ।।[2]

राजधर्म के अंतर्गत आने वाले **"सामदानाद्ययुपाय"** भी राजा दिलीप के गुप्तविचारों से तथा हर्षशोकादि चिन्हों को छिपाने से अनुमान किये जाते थे-**तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढ़ा कारेंगितस्य च।[3]** राजा दिलीप प्रजा को विनम्रता का पाठ पढ़ाने तथा उनका भरण-पोषण करने के कारण उनका वास्तविक पिता था-

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ।।[4]

किसी भी साम्राज्य की सफलता या असफलता प्रशासनिक व्यवस्था पर निर्भर करती है। प्रशासन यदि गतिशील, व्यवस्थित एवं संगठित है तो साम्राज्य सुदृढ़ होगा। रघुवंशी राजाओं में अन्यतम, प्रजाहित के प्रबल चिंतक **'रघु'** अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण सफल शासक हुए। राजा दिलीप और राजा रघु द्वारा प्रजाहित में किये गए कार्यों का बखान ग्राम्य बालाओं के गीतों में गूँजता है। राम ने सीता के प्रति प्रजा द्वारा शंका व्यक्त किए जाने के पश्चात अपने व्यक्तिगत संबंध का (रिश्ते का) विचार न कर, राजधर्म के पालन हेतु उन्होंने अपनी धर्मपत्नी का त्याग कर दिया। इस विषय में महाकवि कालिदास मार्मिक भाव व्यक्त करते हुए कहते है – **'कौलीनभीतेन गृहन्निरस्ता न तेन वैदेहसुता मनस्तः ।'**[5]अर्थात् लोकनिंदा के भय से श्रीराम ने सीताको घर से तो बाहर भेज दिया, परंतु मन से नहीं । प्रजा में वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था करना राजा का अन्य प्रमुख धर्म है। रघुवंश में महाकवि कहते है-**"नृपस्य वर्णाश्रमपालनम् यत् स एव धर्मो मनुना प्रणीतः"।[6]** आश्रम धर्म के अनुपालन में रघुवंशी राजा प्रजा के लिए आदर्शस्वरूप थे-

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ।।[7]

इस प्रकार कालिदास ने स्मृतियों ने प्रतिपादित राजधर्म के द्वारा प्रजा तथा राजा के राजनीतिक सम्बन्ध को नैतिक तथा धार्मिक रूप देकर उसे दृढ़ स्वरूप प्रदान किया है।

कालिदास के पश्चात भारवि ने भी राजधर्म को अपने काव्य में पर्याप्त स्थान दिया। भारवि राजनीति में निष्णात है, उनका राजधर्मविषयक व्यापक ज्ञान युधिष्ठर की उक्तियों में मूर्तिमान हो उठा है। भीम को

समझाते हुए युधिष्ठर कहते है कि बिना विचार किया गया कार्य विपत्ति देने वाला होता है। जो व्यक्ति विचारपूर्वक कार्य करता है, उसके गुणों से आकृष्ट सम्पत्ति स्वयं उसके पास चली जाती है-

सहसा विदधीत न क्रियामविवेक परमापदाम् पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धा: स्वयमेव सम्पदः।।[8]

शत्रु द्वारा अपमान का स्मरण करने के कारण क्षुब्ध भीम को न्याय पथ का सुन्दर उपदेश देते हुए युधिष्ठर कहते है कि जो राजा उचित समय पर मृदुता और तीक्ष्णता धारण करता है वह सूर्य के समान अपने तेज से समस्त जगत को अपना वशवर्ती बनाता है। भीम को नीतिशास्त्र का उपदेश देते हुए धर्मराज कहते है कि यद्यपि इस समय दुर्योधन का उत्कर्ष हो रहा है फिर भी उसकी उपेक्षा करनी चाहिए क्योंकि अविनयी शत्रु को उपेक्षा से ही जीता जा सकता है-**"विपदन्ता ह्यविनीतसंपदः"।[9]**

नीतिज्ञों की राज्य के सुव्यवस्थित संचालन के लिए आवश्यक नीतियों को प्रतिपादित करते हुए कवि माघ ने कहा है कि सहायादि समस्त कार्यों में पाँच अंगों के अतिरिक्त राजा का उस प्रकार दूसरा कोई मन्त्र नहीं है, जिस प्रकार उस शरीर में पाँच स्कन्धों के अतिरिक्त बौद्धों के मत से दूसरा कोई आत्मा नहीं है। राजा के पाँच अंग हैं-1. कार्यों के आरम्भ करने का उपाय, 2. कार्यों की सिद्धि में उपयोगी वस्तुओं का संग्रह, 3. देश तथा काल (स्थान और समय) का यथा योग्य विभाजन, 4. विपत्तियों के दूर करने के उपाय, 5. कार्यों की सिद्धि।

सर्व कार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रों महीभृतांम्॥[10]

राजाओं के सहाय आदि में पाँच अंग समायोजित रहते हैं तो उनके सन्धि, विग्रह के साथ मन्त्रणा करने की आवश्यकता नहीं रहती है। प्रत्येक राजा को अपने राज्य में इन पाँचों अंगों पर ही विशेष ध्यान देना चाहिए। कवि माघ ने पूर्व बौद्ध दर्शन की मान्यता को प्रतिपादित करते हुए राजनीति का यह उपदेश दिया है।

काव्यों के अतिरिक्त संस्कृत नाटकों में भी राजधर्म का यत्र तत्र वर्णन हुआ है। मुद्राराक्षस नाटक में विशाखदत्त ने राजशास्त्र का विशद परिचय दिया है। विशाखदत्त न केवल कौटिल्य के अर्थशास्त्र एवं अन्य नीतिशास्त्रों से परिचित थे बल्कि उसके प्रकांड पण्डित थे। अर्थशास्त्र के राजनीति विषयक विचारों व गजाध्यक्ष, षाडगुण्य, द्रव्य, उपाय, बाह्यकोप, अन्तःकोप जैसे पारिभाषिक शब्दों को विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस में यत्र-तत्र प्रयुक्त किया है। मुद्राराक्षस के तृतीयांक में सफल शासनव्यवस्था की चर्चा की गई है। चाणक्य कहता है कि-**"वृषल ! श्रूयताम् । इह खल्वर्थ शास्त्रकारास्त्रिविधां सिद्धिमुपवर्णयन्ति राजायतां सचिवायतामुभयायतां चेति।[11]**

राज्य के विषय में चन्द्रगुप्त का विचार है-**राज्यं हि नाम राजधर्मानुवृत्तिपरस्य नृपतेर्महदप्रीतिस्थानम्।**[12] राजधर्म का पालन करने में तत्पर राजा के लिए राज्य सुख के स्थान पर दुःख की सृष्टि करने वाला है क्योंकि - दूसरों का हित साधने के लिए राजा को अपना हित छोड़ना पड़ता है, अपने इच्छित आमोद-प्रमोद का त्याग करने के लिए विवश राजा किस बात का 'राजा' ! यदि उसके लिए दूसरों का प्रयोजन अपने प्रयोजन से अधिक अभीष्ट है, तो वह तो पराधीन हुआ. और पराधीन व्यक्ति कैसे जान सकता है कि सुखानुभूति का आनंद क्या चीज़ है-

परार्थानुष्ठाने रहयति नृपं स्वार्थपरता
परित्यक्तस्वार्थो नियतमयथार्थ: क्षितिपति:।
परार्थस्चेत्स्वार्थादभिमततरो हन्त परवान्
परायत्त: प्रीते: कथमिव रसं वेत्ति पुरुष:"।।[13]

आचार्य दण्डी ने दशकुमारचरित में विश्रुतचरित में राजनीति का सुंदर उपदेश स्वाभाविक शैली में प्रस्तुत किया है। वृद्धमंत्री वसुरक्षित अनंतवर्मा को उपदेश देते हुए कहते है "बुद्धिशून्य राजा उन्नतिशील होने पर भी दूसरों के द्वारा आक्रांत होने पर अपने आप को संभाल नही पाता। वह साध्य और साधन का विभाग कर किसी कार्य को करने में समर्थ नहीं होता। निश्चित व्यवहार में दक्ष न होने के कारण प्रत्येक काम में असफल होकर वह अपने और दूसरों से अपमानित होता है। लोग उसका अनादर करने लगते है और उसकी आज्ञा प्रजा के योगक्षेम में असफल रहती है। इसलिए बाहरी विद्याओं में दिलचस्पी छोड़कर तुम अपनी कुलविद्या राजनीति (दण्डनीति) का सेवन करो। इसका सेवन करने से तुम्हें समस्त शक्तियों और सिद्धियों की प्राप्ति होगी और तुम बिना किसी विघ्न के अस्खलित शासन होकर आसमुद्र पृथ्वी का पालन करो।"[14]

संस्कृत साहित्य के आधुनिक नाटक भारतविजयनाटक के प्रथम अंक में भी राजधर्म वर्णित है। दानाशाह शिराज को प्रजा-व्यभिचारी, कलुषित मनोवृत्ति तथा राजधर्म से शून्य बताते है। प्रत्युत्तर में शिराज दानाशाह को कहते है कि इस समय मैं मायावियों के जाल से सम्भ्रान्त हूँ अन्यथा राजधर्म को भली भाँति जानता हूँ। स्वयं को राजधर्मवेत्ता बताते हुए शिराज कहता है कि बुद्धिमान को चाहिए कि धर्म से अर्थ और काम मे रुकावट न डाले, और अर्थ से धर्म और काम में, एवं काम से धर्म और अर्थ में बाधा न डाले। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, आक्रमण और आपत्ति के समय प्रजा का पालन करना चाहिए-यह राजा का धर्म है-

अर्थकामौ न धर्मेण प्रबाधेत विचक्षण:।
धर्मकामौ न चार्थेन न कामेनेतेरद् द्वयम्।
ईतावापत्तिकाले च प्रजानां पालनं चरेत्।

व्यसनाद् भयतो रक्षेदेष धर्मो महीपते:।।[15]

अंत मे कौटिल्य के वचनों में कि "प्रजा के सुख में राजा का सुख निहित है, प्रजा के हित में ही उसे अपना हित दिखना चाहिए । जो स्वयं को प्रिय लगे उसमें राजा का हित नहीं है, उसका हित तो प्रजा को जो प्रिय लगे उसमें है-

प्रजासुखे सुखं राज्ञः प्रजानां तु हिते हितम् ।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम् ॥[16]

संस्कृत काव्यों में अनेकत्र वर्णित इन उपदेशों का अनुपालन करते हुए तत्कालीन राजवर्ग की नैतिकता, चरित्रों की पावनता तथा प्रजावत्सलता ज्ञात होती है। वस्तुतः वर्तमान शासन प्रणाली का मूल उत्स धर्मसूत्र एवं धर्मशास्त्र है, जिसका उपबृहण संस्कृत साहित्य में हुआ है।सहस्रों वर्षों के बाद भी स्मृति ग्रन्थों में निर्दिष्ट तथा संस्कृत काव्यों में राजाओं की राजव्यवस्था में अनुपालित राजधर्मविषयक सूत्रों का वर्तमान शासन व्यवस्था में महनीय योगदान परिलक्षित होता है। हजारों वर्ष पूर्व निर्मित ये सिद्धान्त यद्यपि भिन्न परिस्थितियों में लिखे गए थे किन्तु आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। वर्तमान शासन व्यवस्था में धर्मशास्त्र प्रोक्त इन राजधर्म विषयक गुणों का अनुकरण यदि वर्तमान शासक करें तो निश्चित रूप से प्रजा का हित हो सकता है। किञ्च संस्कृत साहित्य में वर्णित राजव्यवस्था के सूत्रों की हजारों वर्षों के उपरांत प्रासंगिकता से यह भी सिद्ध होता है कि ये रचनाएं कालजयी है।

पादटिपण्णी-

---

[1] रघुवंश,१/५-७
[2] रघुवंश,१/१८
[3] रघुवंश,१/२०
[4] रघुवंश, १/२४
[5] रघुवंश,१४/ ८४
[6] रघुवंश,१४/६७
[7] रघुवंश-१/८
[8] किरातार्जुनीयम्-२/३०
[9] किरातार्जुनीयम्-२/५२

[10] शिशुपालवध-२/२६

[11] मुद्राराक्षस, पृ.१७६,

[12] मुद्राराक्षस, अंक-३

[13] मुद्राराक्षसम्, ३/४

[14] दशकुमारचरितम्,अष्टमउच्छवास, पृ-255,56

[15] भारतविजयनाटकम्-१/१८-१९

[16] अर्थशास्त्रम्-१/१९/३४

सन्दर्भग्रन्थसूची :-

1. अर्थशास्त्रम्, वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी २०००
2. किरातार्जुनीयम्,पंडित दुर्गा प्रसाद ,निर्णय सागर प्रेस बम्बई -१८९५
3. दशकुमारचरितम्, श्री कृष्ण मणि त्रिपाठी ,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन -२०१०
4. मुद्राराक्षसम्,जगदीश चन्द्र मिश्र , चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान वाराणसी २०१३
5. रघुवंश,श्री कृष्ण मणि त्रिपाठी ,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन ,२०१८
6. शिशुपालवध, राम जी लाल शर्मा , चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन -२०११
7. भारतविजयनाटकम्, मोतीलालबनारसीदास नई दिल्ली -२००६